॥ श्रीहरिः ॥

संध्योपासनविधि और तर्पण एवं बलिवैश्वदेव-विधि

(मन्त्रानुवादसहित)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

सम्पादक

म० म० पं० विद्याधर शर्मा गौड, वेदाचार्य
पं० मदनमोहन शास्त्री
पाण्डेय पं० रामनारायणदत्त शास्त्री

[210]1 A

सं० २०६७ अठारहवाँ पुनर्मुद्रण १०,०००

कुल मुद्रण १,७१,०००

❖ मूल्य—५ रु०
(पाँच रुपये)

ISBN 81-293-0220-9

प्रकाशक एवं मुद्रक—
गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
(गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान)
फोन : (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५० ; फैक्स : (०५५१) २३३६९९७
e-mail : **booksales@gitapress.org** website : **www.gitapress.org**

[210]

॥ श्रीहरिः ॥

संध्योपासनविधि

ब्राह्म मुहूर्तमें जब चार घड़ी रात बाकी रहे, शयनसे उठकर भगवान्‌का स्मरण करे; फिर शौच-स्नानके अनन्तर शुद्ध वस्त्र धारण करके पवित्र तथा एकान्त-स्थानमें कुश अथवा कम्बल आदिके आसनपर पूर्व, ईशान अथवा उत्तर दिशाकी ओर मुँह करके बैठे। [तीनों कालकी संध्यामें उपर्युक्त दिशाओंकी ओर ही मुँह करके बैठना चाहिये, केवल सूर्यार्घ्यदान, सूर्योपस्थान और गायत्रीजप सूर्याभिमुख होकर करना आवश्यक है।] बायें हाथमें तीन कुश और दायें हाथमें दो कुशोंकी बनी हुई पवित्री '**ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ०**'[१] इस मन्त्रसे धारण करे। कुशके अभावमें सोने, चाँदी अथवा ताँबेकी अँगूठी पहनकर भी कार्य किया जा सकता है। ॐकार और व्याहृतियोंसहित गायत्री-मन्त्रका उच्चारण करके शिखा बाँध ले, यदि पहलेसे ही शिखा बँधी हो तो उसका स्पर्शमात्र कर ले। एक जोड़ा शुद्ध यज्ञोपवीत[२] धारण किये रहना आवश्यक है। देहपर धौत वस्त्रके अतिरिक्त

१- ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम्॥

२- यहाँ आवश्यक समझकर नूतन यज्ञोपवीत-धारणका समय तथा उसकी संक्षिप्त विधिका उल्लेख किया जाता है। अशौचके समाप्त होनेपर, मूत्र-पुरीषोत्सर्ग करते समय दाहिने कानके ऊपर जनेऊ रखनेमें भूल होनेपर या उसके गिरने अथवा टूट जानेपर नूतन यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये। इसके धारणकी संक्षिप्त विधि यह है—स्नानके अनन्तर आसनपर बैठकर आचमन करे, फिर यज्ञोपवीतको लेकर 'आपो हि ष्ठा०' आदि मन्त्रोंद्वारा जलसे उसका अभिषेक करे। तत्पश्चात् उसके नौ तन्तुओंमें क्रमशः ॐकार, अग्नि, सर्प, सोम, पितर, प्रजापति, वायु, यम और विश्वेदेवकी तथा तीन ग्रन्थियोंमें क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रकी भावना करके—

यज्ञोपवीतमिति परमेष्ठी ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः लिङ्गोक्ता देवता श्रौतस्मार्त-कर्मानुष्ठानाधिकारसिद्धये यज्ञोपवीतपरिधाने विनियोगः।

एक उत्तरीय वस्त्र (चादर या गमछा आदि) डाले रहना चाहिये। उत्तरीय वस्त्रके अभावमें एक और यज्ञोपवीत (कुल मिलाकर तीन यज्ञोपवीत) धारण किये रहे। फिर किसी पात्रमें शुद्ध जल रखकर उसे बायें हाथमें उठा ले और दायें हाथके कुशसे अपने शरीरपर जल सींचते हुए निम्नांकित मन्त्र पढ़े—

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

'मनुष्य अपवित्र हो या पवित्र अथवा किसी भी दशामें स्थित हो, जो पुण्डरीकाक्ष (कमलनयन) भगवान् विष्णुका स्मरण करता है, वह बाहर और भीतर सब ओरसे शुद्ध हो जाता है।'

फिर नीचे लिखे मन्त्रसे आसनपर जल छिड़ककर दायें हाथसे उसका स्पर्श करे—

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्॥

'हे पृथ्वी देवि ! तुमने सम्पूर्ण लोकोंको धारण कर रखा है और भगवान् विष्णुने तुम्हें धारण किया है। हे देवि ! तुम मुझे धारण करो और

—यह विनियोग पढ़े और—

ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥
यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि।

(पा० गृ० सूत्र २। २। ११)

—इस मन्त्रको पढ़कर एक जोड़ा यज्ञोपवीत पहने। फिर कम-से-कम बीस बार गायत्री-मन्त्रका जप करे। बलिवैश्वदेव करनेवालेको तीन यज्ञोपवीत धारण करके कम-से-कम तीस बार गायत्रीका जप करना चाहिये। इसके बाद प्राचीन यज्ञोपवीतको गलेसे बाहर निकालकर 'समुद्रं गच्छ स्वाहा'—इस मन्त्रको पढ़कर जलाशयमें फेंक दे। इस प्रकार यज्ञोपवीत धारण करनेके बाद ही संध्या आदि कर्म करनेका अधिकार होता है।

मेरे आसनको पवित्र कर दो।'

इसके बाद यथारुचि शास्त्रानुकूल भस्म, चन्दन* आदिका तिलक करे।

तत्पश्चात् **'ॐ केशवाय नमः', 'ॐ नारायणाय नमः', 'ॐ माधवाय नमः'**—इन तीनों मन्त्रोंको पढ़कर प्रत्येकसे एक-एक बार [कुल तीन बार] पवित्र जलसे आचमन करे [आचमनके समय हाथ जानुओंके भीतर हो, पूर्व, ईशान या उत्तर दिशाकी ओर ही मुख हो। ब्राह्मण इतना जल पीये जो हृदयतक पहुँच सके, क्षत्रिय इतना ही जल ग्रहण करे जो कण्ठतक पहुँच सके, वैश्य इतना जल ले जो तालुतक जा सके। उस समय ओठ बहुत न खोले, अंगुलियाँ परस्पर सटी रहें। अंगुष्ठ और कनिष्ठिका अलग रहें। खड़ा न हो, हँसता न रहे। जलमें फेन या बुलबुले आदि न हों]। ब्राह्मतीर्थसे तीन बार आचमन

---

* मृत्तिका चन्दनं चैव भस्म तोयं चतुर्थकम्।
एभिर्द्रव्यैर्यथाकालमूर्ध्वपुण्ड्रं भवेत् सदा॥
(आह्निकप्रकाश)

यहाँ ऊर्ध्वपुण्ड्र शब्द तिलकके सभी प्रकारोंका उपलक्षक है। तात्पर्य यह कि तीर्थकी मिट्टी, चन्दन, भस्म अथवा जल—इन द्रव्योंसे समयानुसार सदा ऊर्ध्वपुण्ड्र, त्रिपुण्ड्र आदि किया जाता है। [चन्दन देवताका प्रसाद ही धारण करे। केवल अपने लिये नहीं घिसना चाहिये।]

कुछ लोग भस्म और चन्दनमें गायत्रीमन्त्रका उपयोग करते हैं। सम्प्रदायनिष्ठ पुरुषोंको अपनी सम्प्रदाय-मर्यादाके अनुसार मन्त्रोंका उपयोग करना चाहिये। सर्वसाधारण स्मार्त पुरुषोंके लिये भस्मधारणका मन्त्र यहाँ लिखा जाता है—

'ॐ अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म सर्वꣳह वा इदꣳभस्म मन एतानि चक्षूꣳषि' इस मन्त्रसे भस्मको अभिमन्त्रित करके 'त्र्यायुषं जमदग्नेः' इस मन्त्रसे ललाटमें, 'कश्यपस्य त्र्यायुषम्' इस मन्त्रसे गलेमें, 'यद्देवेषु त्र्यायुषम्' इस मन्त्रसे दोनों भुजाओंके मूलमें और 'तन्नोऽस्तु त्र्यायुषम्' इस मन्त्रसे हृदयमें लगावे।

करनेके पश्चात् 'ॐ गोविन्दाय नमः' यह मन्त्र पढ़कर हाथ धो ले। इसके बाद दो बार अँगूठेके मूलसे ओठको पोंछे, फिर हाथ धो ले। अँगूठेका मूल ब्राह्मतीर्थ है। तत्पश्चात् भीगी हुई अंगुलियोंसे मुख आदिका स्पर्श करे। मध्यमा-अनामिकासे मुख, तर्जनी-अंगुष्ठसे नासिका, मध्यमा-अंगुष्ठसे नेत्र, अनामिका-अंगुष्ठसे कान, कनिष्ठिका-अंगुष्ठसे नाभि, दाहिने हाथसे हृदय, सब अंगुलियोंसे सिर, पाँचों अंगुलियोंसे दाहिनी बाँह और बायीं बाँहका स्पर्श करना चाहिये।

तदनन्तर हाथमें जल लेकर निम्नांकित संकल्प पढ़कर वह जल भूमिपर गिरा दे—

हरिः ॐ तत्सदद्यैतस्य श्रीब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराह-कल्पे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशान्तर्गते पुण्यक्षेत्रे कलियुगे कलिप्रथमचरणे अमुकसंवत्सरे[१] अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रोत्पन्नः अमुकशर्माऽहं[२] ममोपात्तदुरितक्षयपूर्वकं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रातः [मध्याह्न अथवा सायं]-संध्योपासनं करिष्ये।

इसके बाद निम्नांकित विनियोग पढ़े—

ऋतं चेति त्र्यृचस्य माधुच्छन्दसोऽघमर्षण ऋषिरनुष्टुप् छन्दो भाववृत्तं दैवतमपामुपस्पर्शने विनियोगः।

फिर नीचे लिखे मन्त्रको एक बार पढ़कर एक ही बार आचमन करे—

ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत। ततः समुद्रो अर्णवः। समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरो अजायत।

१- 'अमुक' शब्दके स्थानमें संवत्सर, मास आदिका नाम जोड़ लेना चाहिये।

२- ब्राह्मण अपने नामके आगे शर्मा, क्षत्रिय वर्मा और वैश्य गुप्त शब्दका प्रयोग करे।

अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी। सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः॥

(ऋग्वेद १०।१९०।१)

[महाप्रलयके बाद इस महाकल्पके आरम्भमें] सब ओरसे प्रकाशमान तपरूप परमात्मासे ऋत (सत्यसंकल्प) और सत्य (यथार्थ भाषण)-की उत्पत्ति हुई। उसी परमात्मासे रात्रि-दिन[1] प्रकट हुए तथा उसीसे जलमय समुद्रका आविर्भाव हुआ। जलमय समुद्रकी उत्पत्तिके पश्चात् दिनों और रात्रियोंको धारण करनेवाला कालस्वरूप संवत्सर प्रकट हुआ जो कि पलक मारनेवाले जंगम प्राणियों और स्थावरोंसे युक्त समस्त संसारको अपने अधीन रखनेवाला है। इसके बाद सबको धारण करनेवाले परमेश्वरने सूर्य, चन्द्रमा, दिव् (स्वर्गलोक), पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा महर्लोक आदि लोकोंकी भी पूर्वकल्पके अनुसार सृष्टि की।

तदनन्तर प्रणवपूर्वक गायत्री-मन्त्र पढ़कर रक्षाके लिये अपने चारों ओर जल छिड़के। फिर नीचे लिखे विनियोगको पढ़े—

ॐकारस्य ब्रह्मा ऋषिर्दैवी गायत्री छन्दः परमात्मा देवता सप्तव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुब्जगत्यश्छन्दांस्यग्निवायुसूर्यबृहस्पतिवरुणेन्द्रविश्वेदेवा देवताः, तत्सवितुरिति विश्वामित्र[2] ऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता, आपोज्योतिरिति शिरसः प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दो ब्रह्माग्निवायुसूर्या देवताः प्राणायामे विनियोगः।

इसके पश्चात् आँखें बंद करके नीचे लिखे मन्त्रसे प्राणायाम करे। उसकी विधि इस प्रकार है—'पहले दाहिने हाथके अँगूठेसे नासिकाका

१- यहाँ रात्रि-दिन शब्दसे ब्रह्माकी रात्रि और दिन समझने चाहिये।

२- 'विश्वस्य जगतो मित्रं विश्वामित्रः प्रजापतिः।' इस वचनके अनुसार विश्वामित्र शब्दका अर्थ प्रजापति ब्रह्मा है।

दायाँ छिद्र बंद करके बायें छिद्रसे वायुको अंदर खींचे, साथ ही नाभिदेशमें नीलकमलदलके समान श्यामवर्ण चतुर्भुज भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए प्राणायाम-मन्त्रका तीन बार पाठ कर जाय। [यदि तीन बार मन्त्रपाठ न हो सके तो एक ही बार पाठ करे और अधिकके लिये अभ्यास बढ़ावे।] इसे पूरक कहते हैं। पूरकके पश्चात् अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियोंसे नासिकाके बायें छिद्रको भी बंद करके तबतक श्वासको रोके रहे, जबतक कि प्राणायाम-मन्त्रका तीन बार [या शक्तिके अनुसार एक बार] पाठ न हो जाय। इस समय हृदयके बीच कमलके आसनपर विराजमान अरुण-गौर-मिश्रित वर्णवाले चतुर्मुख ब्रह्माजीका ध्यान करे। यह कुम्भक क्रिया है। इसके बाद अँगूठा हटाकर नासिकाके दाहिने छिद्रसे वायुको धीरे-धीरे तबतक बाहर निकाले, जबतक प्राणायाम-मन्त्रका तीन [या एक] बार पाठ न हो जाय। इस समय शुद्धस्फटिकके समान श्वेतवर्णवाले त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकरका ध्यान करे। यह रेचक-क्रिया है। यह सब मिलकर एक प्राणायाम कहलाता है।

प्राणायामका मन्त्र यह है—

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्॥

(तै० आ० प्र० १० अ० २७)

हम स्थावर-जंगमरूप सम्पूर्ण विश्वको उत्पन्न करनेवाले उन निरतिशय प्रकाशमय परमेश्वरके भजनेयोग्य तेजका ध्यान करते हैं, जो कि हमारी बुद्धियोंको सत्कर्मोंकी ओर प्रेरित करते हैं और जो भूर्, भुवर्, स्वर्, महर्, जन, तप और सत्य नामवाले समस्त लोकोंमें व्याप्त हैं तथा जो सच्चिदानन्दस्वरूप जलरूपसे जगत्का पालन करनेवाले, अनन्त तेजके धाम, रसमय, अमृतमय और भूर्भुवःस्वःस्वरूप (त्रिभुवनात्मक) ब्रह्म हैं।

फिर आगे लिखा विनियोग पढ़े—

सूर्यश्च मेति नारायण ऋषिः प्रकृतिश्छन्दः सूर्यमन्युमन्युपतयो रात्रिश्च देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः।

तत्पश्चात् निम्नाङ्कित मन्त्रको पढ़कर एक बार आचमन करे—

ॐ सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यद्रात्र्या पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुम्पतु। यत्किञ्च दुरितं मयि इदमहं माममृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा॥ (तै० आ० प्र० १० अ० २५)

सूर्य, क्रोधके अभिमानी देवता और क्रोधके स्वामी—ये सभी क्रोधवश किये हुए पापोंसे मेरी रक्षा करें [अर्थात् कृत पापोंको नष्ट करके होनेवाले पापोंसे बचावें]। रातमें मैंने मन, वाणी, हाथ, पैर, उदर और शिश्न (उपस्थ) इन्द्रियसे जो पाप किये हों, उन सबको रात्रिकालाभिमानी देवता नष्ट करें। जो कुछ भी पाप मुझमें वर्तमान है, इसे और इसके कर्तृत्वका अभिमान रखनेवाले अपनेको मैं मोक्षके कारणभूत प्रकाशमय सूर्यरूप परमेश्वरमें हवन करता हूँ [अर्थात् हवनके द्वारा अपने समस्त पाप और अहंकारको भस्म करता हूँ]। इसका भलीभाँति हवन हो जाय।

उपर्युक्त आचमन-मन्त्र प्रातःकालकी संध्याका है। मध्याह्न और सायंकालके केवल आचमन-मन्त्र प्रातःकालसे भिन्न हैं।

मध्याह्नका विनियोग और मन्त्र इस प्रकार है—

आपः पुनन्त्विति नारायण ऋषिरनुष्टुप् छन्द आपः पृथिवी ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्म च देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः।

इस विनियोगको पढ़े। फिर नीचे लिखे मन्त्रको पढ़कर एक बार आचमन करे—

ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु माम्। पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम्। यदुच्छिष्टमभोज्यं यद्वा दुश्चरितं मम। सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रहꣳस्वाहा॥

(तै० आ० प्र० १० अ० २३)

जल पृथिवीको [प्रोक्षण आदिके द्वारा] पवित्र करे। पवित्र हुई पृथ्वी मुझे पवित्र करे। वेदोंके पति परमात्मा मुझे शुद्ध करें। मैंने जो कभी किसी भी प्रकारका उच्छिष्ट या अभक्ष्य भक्षण किया हो अथवा इसके अतिरिक्त भी मेरे जो पाप हों, उन सबको दूर करके जल मुझे शुद्ध कर दे तथा नीच पुरुषोंसे लिये हुए दानरूप दोषको भी दूर करके जल मुझे पवित्र करे। पूर्वोक्त सभी दोषोंका भलीभाँति हवन हो जाय।

सायंकालके आचमनका विनियोग और मन्त्र इस प्रकार है—

अग्निश्च मेति नारायण ऋषिः प्रकृतिश्छन्दोऽग्निमन्युमन्युपतयोऽहश्च देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः।

इस विनियोगको पढ़े। फिर नीचे लिखे मन्त्रको पढ़कर एक बार आचमन करे—

ॐ अग्निश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यदह्ना पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना अहस्तदवलुम्पतु। यत्किञ्च दुरितं मयि इदमहं माममृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा॥ (तै० आ० प्र० १० अ० २४)

अग्नि, क्रोधके अभिमानी देवता और क्रोधके स्वामी—ये सभी क्रोधवश किये हुए पापोंसे मेरी रक्षा करें [अर्थात् कृत पापोंको नष्ट करके होनेवाले पापोंसे बचावें]। मैंने दिनमें मन, वाणी, हाथ, पैर, उदर और शिश्न (उपस्थ) इन्द्रियसे ज़ो पाप किये हों, उन सबको दिनके अभिमानी देवता नष्ट करें। जो कुछ भी पाप मुझमें वर्तमान है, इसे तथा इसके कर्तृत्वका अभिमान रखनेवाले अपनेको मैं मोक्षके कारणभूत सत्यस्वरूप प्रकाशमय परमेश्वरमें हवन करता हूँ [अर्थात् हवनके द्वारा अपने सारे पाप और अहंकारको भस्म करता हूँ]। इसका भलीभाँति हवन हो जाय।

फिर निम्नांकित विनियोगको पढ़े—

आपो हि ष्ठेति त्र्यृचस्य सिन्धुद्वीप ऋषिर्गायत्री छन्द आपो देवता मार्जने विनियोगः।

इसके पश्चात् निम्नांकित तीन ऋचाओंके नौ चरणोंमेंसे सात चरणोंको पढ़ते हुए सिरपर जल सींचे, आठवेंसे पृथ्वीपर जल डाले और फिर नवें चरणको पढ़कर सिरपर ही जल सींचे। यह मार्जन तीन कुशों अथवा तीन अंगुलियोंसे करना चाहिये। मार्जन-मन्त्र ये हैं—

ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवः। ॐ ता न ऊर्जे दधातन। ॐ महे रणाय चक्षसे। ॐ यो वः शिवतमो रसः। ॐ तस्य भाजयतेह नः। ॐ उशतीरिव मातरः। ॐ तस्मा अरं गमाम वः। ॐ यस्य क्षयाय जिन्वथ। ॐ आपो जनयथा च नः।

(यजु० ११। ५०—५२)

हे जल ! तुम निश्चय ही कल्याणकारी हो, अतः [अन्नादि रसोंके द्वारा] बलकी वृद्धिके लिये तथा अत्यन्त रमणीय परमात्मदर्शनके लिये तुम हमारा पालन करो। जिस प्रकार पुत्रोंकी तुष्टि चाहनेवाली माताएँ उन्हें अपने स्तनोंका दुग्ध पान कराती हैं, उसी प्रकार तुम्हारा जो परम कल्याणमय रस है, उसके भागी हमें बनाओ। हे जल ! जगत्के जीवनाधारभूत जिस रसके एक अंशसे तुम समस्त विश्वको तृप्त करते हो, उस रसकी पूर्णताको हम प्राप्त हों [अर्थात् उस रससे हम पूर्णतया तृप्ति लाभ करें।]। हे जल! तुम हमें उस रसके भोक्ता बनाओ [अर्थात् उसे भोगनेकी क्षमता दो]।

तदनन्तर नीचे लिखे विनियोगको पढ़े—

द्रुपदादिवेत्यश्विसरस्वतीन्द्रा ऋषयोऽनुष्टुप् छन्द आपो देवताः शिरस्सेके विनियोगः।

फिर बायें हाथमें जल लेकर उसे दाहिने हाथसे ढक ले और नीचे लिखे मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके उसे सिरपर छिड़क ले—

ॐ द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव।
पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः।

(यजु० २०। २०)

जैसे पादुकासे अलग होता हुआ मनुष्य पादुकाके मलादि दोषोंसे मुक्त

हो जाता है, जिस प्रकार पसीनेसे भीगा हुआ पुरुष स्नान करनेके पश्चात् मैलसे रहित होता है तथा जैसे पवित्रक आदिसे घी शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार जल मुझे पापोंसे शुद्ध करे [अर्थात् मुझे सर्वथा निष्पाप कर दे]।

पुन: निम्नांकित विनियोग-वाक्यको पढ़े—

ऋतञ्चेति त्र्यृचस्य माधुच्छन्दसोऽघमर्षण ऋषिरनुष्टुप् छन्दो भाववृत्तं दैवतमघमर्षणे विनियोगः।

फिर दाहिने हाथमें जल लेकर नासिकामें लगावे और [यदि सम्भव हो तो श्वास रोककर] नीचे लिखे मन्त्रको तीन बार या एक बार पढ़ते हुए मन-ही-मन यह भावना करे कि यह जल नासिकाके बायें छिद्रसे भीतर घुसकर अन्त:करणके पापको दायें छिद्रसे निकाल रहा है, फिर उस जलकी ओर दृष्टि न डालकर अपनी बायीं ओर फेंक दे [अथवा वामभागमें शिलाकी भावना करके उसपर उस पापको पटककर नष्ट कर देनेकी भावना करे]।

अघमर्षण-मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत। ततः समुद्रो अर्णवः। समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी। सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः॥*

(ऋग्वेद १०।१९०।१)

इसके पश्चात् नीचे लिखे विनियोग-वाक्यका पाठ करे—

अन्तश्चरसीति तिरश्चीन ऋषिरनुष्टुप् छन्द आपो देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः।

फिर आगे लिखा मन्त्र पढ़कर एक बार आचमन करे—

* इस मन्त्रका अर्थ इसी पुस्तकके पृष्ठ ७ पर दिया जा चुका है।

ॐ अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृत्॥

(कात्यायनपरिशिष्टसूत्र)

'हे जलरूप परमात्मन्! तुम समस्त प्राणियोंके भीतर उनकी हृदयरूप गुहामें विचरते हो, तुम्हारा सब ओर मुख है; तुम्हीं यज्ञ हो, तुम्हीं वषट्कार (इन्द्रादिका भाग हविष्य) हो और तुम्हीं जल, प्रकाश, रस एवं अमृत हो।'

तदनन्तर नीचे लिखे विनियोग-वाक्यका पाठमात्र करे—

ॐकारस्य ब्रह्मा ऋषिर्दैवी गायत्री छन्दः परमात्मा देवता, तिसृणां महाव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांस्यग्निवायुसूर्या देवताः, तत्सवितुरिति विश्वामित्र ऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता सूर्यार्घ्यदाने विनियोगः।

फिर सूर्यके सामने एक चरणकी एँड़ी (पिछला भाग) उठाये हुए अथवा एक पैरसे खड़ा होकर या एक पैरके आधे भागसे खड़ा हो ॐकार और व्याहृतियोंसहित गायत्री-मन्त्रको तीन बार पढ़कर पुष्प मिले हुए जलसे सूर्यको तीन बार अर्घ्य दे। प्रातः और मध्याह्नका अर्घ्य जलमें देना चाहिये। यदि जल न हो तो स्थलको भलीभाँति जलसे धोकर उसीपर अर्घ्यका जल गिरावे; परन्तु सायंकालका अर्घ्य कदापि जलमें न दे। खड़ा होकर अर्घ्य देनेका नियम केवल प्रातः और मध्याह्नकी संध्यामें है; सायंकालमें तो बैठकर भूमिपर ही अर्घ्य-जल गिराना चाहिये। मध्याह्नकी संध्यामें एक ही बार अर्घ्य देना चाहिये और प्रातः एवं सायं-संध्यामें तीन-तीन बार। सूर्यार्घ्य देनेका मन्त्र [अर्थात् प्रणव-व्याहृतिसहित गायत्री-मन्त्र] इस प्रकार है—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।* (यजु० ३६। ३)

इस मन्त्रको पढ़कर '**ब्रह्मस्वरूपिणे सूर्यनारायणाय इदमर्घ्यं दत्तं**

* गायत्री-मन्त्रका अर्थ इसी पुस्तकके पृष्ठ १८ पर देखिये।

न मम' ऐसा कहकर प्रात:काल[१] अर्घ्य समर्पण करे।

तदनन्तर नीचे लिखे विनियोग-वाक्यको पढ़े—

उद्वयमिति प्रस्कण्व ऋषिरनुष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता, उदु त्यमिति प्रस्कण्व ऋषिर्निचृद्गायत्री छन्दः सूर्यो देवता, चित्रमिति कुत्साङ्गिरस ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता, तच्चक्षुरिति दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिरेकाधिका ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः।

तदनन्तर प्रात:काल खड़ा होकर और सायंकाल बैठे हुए ही अञ्जलि बाँधकर तथा मध्याह्नकालमें खड़ा हो दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर [यदि सम्भव हो तो] सूर्यकी ओर देखते हुए '**उद्वयम्०**' इत्यादि चार मन्त्रोंको पढ़कर उन्हें प्रणाम करे। फिर अपने स्थानपर ही सूर्यदेवकी एक बार प्रदक्षिणा करते हुए उन्हें नमस्कार करके बैठ जाय। [मध्याह्नकालमें गायत्री-मन्त्र, विभ्राट्-अनुवाक, पुरुषसूक्त, शिवसंकल्प और मण्डलब्राह्मणका भी यथासम्भव पाठ करना चाहिये[२]।]

ॐ उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ (यजु० २०। २१)

हम अन्धकारसे ऊपर उठकर उत्तम स्वर्गलोकको तथा देवताओंमें अत्यन्त उत्कृष्ट सूर्यदेवको भलीभाँति देखते हुए उस सर्वोत्तम ज्योतिर्मय परमात्माको प्राप्त हों।

ॐ उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ (यजु० ७। ४१)

उत्पन्न हुए समस्त प्राणियोंके ज्ञाता उन सूर्यदेवको छन्दोमय अश्व सम्पूर्ण जगत्को उनका दर्शन कराने [या दृष्टि प्रदान करने]-के लिये

१- मध्याह्नकालमें 'ब्रह्मस्वरूपिणे' के स्थानपर 'विष्णुस्वरूपिणे' और सायंकालमें 'रुद्रस्वरूपिणे' ऐसा परिवर्तन कर लेना चाहिये।

२- गायत्र्या च यथाशक्तिविभ्राडित्यनुवाकपुरुषसूक्तशिवसंकल्पमण्डलब्राह्मणैरित्युपस्थाय प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्योपविशेत्। (का० सू० क० २)

ऊपर-ही-ऊपर शीघ्रगतिसे लिये जा रहे हैं।

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳसूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥

(यजु० ७।४२)

जो तेजोमयी किरणोंके पुञ्ज हैं, मित्र, वरुण तथा अग्नि आदि देवताओं एवं समस्त विश्वके नेत्र हैं और स्थावर तथा जंगम—सबके अन्तर्यामी आत्मा हैं, वे भगवान् सूर्य आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्षलोकको अपने प्रकाशसे पूर्ण करते हुए आश्चर्यरूपसे उदित हुए हैं।

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳशृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ *

(यजु० ३६।२४)

देवता आदि सम्पूर्ण जगत्का हित करनेवाले और सबके नेत्ररूप वे

---

* इसके बाद कुछ प्रतियोंमें अंगन्यासका उल्लेख मिलता है, किंतु धर्माब्धिसार आदि ग्रन्थोंमें न्यास आदि कर्मको अविवक्षित बताया है, अतः उसका करना न करना अपनी इच्छापर निर्भर है। जो लोग अंगन्यास करनेकी इच्छा रखते हों, उनकी सुविधाके लिये यहाँ अंगन्यास-विधि दी जाती है—

ॐ हृदयाय नमः॥ १॥ ॐ भूः शिरसे स्वाहा॥ २॥ ॐ भुवः शिखायै वषट्॥ ३॥ ॐ स्वः कवचाय हुम्॥ ४॥ ॐ भूर्भुवः नेत्राभ्यां वौषट्॥ ५॥ ॐ भूर्भुवः स्वः अस्त्राय फट्॥ ६॥

उपर्युक्त छः मन्त्रवाक्य अंगन्यासके हैं। इनमेंसे पहले वाक्यका उच्चारण कर दाहिने हाथकी पाँचों अंगुलियोंसे हृदयका स्पर्श करे। दूसरे वाक्यसे मस्तकका और तीसरेसे शिखाका स्पर्श करे। चतुर्थ वाक्य पढ़कर दाहिने हाथकी अंगुलियोंसे बायें कंधेका और बायें हाथकी अंगुलियोंसे दायें कंधेका स्पर्श करे। पञ्चम वाक्यसे दोनों नेत्रोंका स्पर्श करना चाहिये। छठा वाक्य पढ़कर दाहिने हाथको बायीं ओरसे पीछेकी ओर ले जाकर दाहिनी ओरसे आगेकी ओर ले आवे और तर्जनी तथा मध्यमा अंगुलियोंसे बायें हाथकी हथेलीपर ताली बजावे।

तेजोमय भगवान् सूर्य पूर्व दिशासे उदित हो रहे हैं। [उनके प्रसादसे] हम सौ वर्षोंतक देखते रहें, सौ वर्षोंतक जीते रहें, सौ वर्षोंतक सुनते रहें, सौ वर्षोंतक हममें बोलनेकी शक्ति रहे तथा सौ वर्षोंतक हम कभी दीन-दशाको न प्राप्त हों। इतना ही नहीं, सौ वर्षोंसे अधिक कालतक भी हम देखें, जीवें, सुनें, बोलें एवं कभी दीन न हों।

इसके बाद—

तेजोऽसीति धाम नामासीत्यस्य च परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिर्यजुस्त्रिष्टुबृगुष्णिहौ छन्दसी सविता देवता गायत्र्यावाहने विनियोगः।

इस विनियोगको पढ़कर निम्नांकित मन्त्रसे विनयपूर्वक गायत्रीदेवीका आवाहन करे—

ॐ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि। धाम नामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि। (यजु० १।३१)

हे सूर्यस्वरूपा गायत्री देवि ! तुम देदीप्यमान तेजोमयी हो, शुद्ध हो और अमृत (नित्य ब्रह्मरूपा) हो। तुम्हीं परम धाम और नामरूपा हो। तुम्हारा किसीसे भी पराभव नहीं होता। तुम देवताओंकी प्रिय और उनके यजनकी साधनभूता हो [मैं तुम्हारा आवाहन करता हूँ]।

फिर नीचे लिखे विनियोग-वाक्यको पढ़े—

गायत्र्यसीति विवस्वान् ऋषिः स्वराण्महापङ्क्तिश्छन्दः परमात्मा देवता गायत्र्युपस्थाने विनियोगः।

तत्पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रसे गायत्रीको प्रणाम करे—

ॐ गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदसि न हि पद्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसेऽसावदो मा प्रापत्॥

(बृहदारण्यक-उप० ५।१४।७)

हे गायत्रि ! तुम त्रिभुवनरूप प्रथम चरणसे एकपदी हो, ऋक्, यजुः एवं सामरूप द्वितीय चरणसे द्विपदी हो। प्राण, अपान तथा व्यानरूप तृतीय चरणसे त्रिपदी हो और तुरीय ब्रह्मरूप चतुर्थ चरणसे चतुष्पदी हो। निर्गुण

स्वरूपसे अचिन्त्य होनेके कारण तुम '**अपद्**' हो [इसीलिये वेद '**नेति-नेति**' कहकर तुम्हारे स्वरूपका वर्णन करते हैं]। अतएव मन-बुद्धिके अगोचर होनेसे तुम सबके लिये प्राप्य नहीं हो। तुम्हारे दर्शनीय (अनुभव करनेयोग्य) चतुर्थ पदको, जो प्रपञ्चसे परे वर्तमान शुद्ध परब्रह्मरूप है, नमस्कार है। तुम्हारी प्राप्तिमें विघ्न डालनेवाले वे राग-द्वेष, काम-क्रोध आदिरूप पाप मेरे पास न पहुँच सकें [अर्थात् परब्रह्मस्वरूपिणी तुम्हें मैं निर्विघ्न प्राप्त करूँ]।*

इसके अनन्तर नीचे लिखे विनियोग-वाक्यको पढ़े—

ॐकारस्य ब्रह्मा ऋषिर्दैवी गायत्री छन्दः परमात्मा देवता, तिसृणां महाव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांस्यग्नि-वायुसूर्या देवताः तत्सवितुरिति विश्वामित्रऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता जपे विनियोगः।

फिर नीचे लिखे अनुसार गायत्री-मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार माला आदिसे गिनते हुए जप करे। अधिक जहाँतक हो अच्छा है। जपके समय गायत्रीके तेजोमय स्वरूपका ध्यान और मन्त्रके अर्थका अनुसंधान होता रहे तो बहुत ही उत्तम है। गायत्री-मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ। (यजु० ३६। ३)

---

* इस मन्त्रका दूसरा अर्थ इस प्रकार भी हो सकता है—

हे गायत्री देवि ! तुम समग्र ब्रह्मरूपा होनेके कारण एक पदवाली हो [अर्थात् जो कुछ है, वह ब्रह्मस्वरूप ही है, इस न्यायसे तुम एक पदवाली हो]। सगुण-निर्गुणरूपा होनेसे तुम दो पदोंवाली हो। ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूपसे तीन पदोंवाली हो। विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर और परब्रह्मरूपा होनेके कारण तुम चार पदोंवाली हो। अचिन्त्य होनेसे तुम 'अपद्' हो, अतएव सबके लिये तुम प्राप्त नहीं हो। तुम्हारे दर्शनीय (अनुभव करनेयोग्य) चतुर्थ पदको, जो प्रपञ्चसे परे वर्तमान शुद्ध परब्रह्मस्वरूप है, नमस्कार है। तुम्हारी प्राप्तिमें विघ्न डालनेवाले वे राग-द्वेष, काम-क्रोध आदिरूप पाप मेरे पास न पहुँच सकें [अर्थात् परब्रह्मस्वरूपिणी ! तुम्हें मैं निर्विघ्न प्राप्त करूँ]।

हम स्थावर-जंगमरूप सम्पूर्ण विश्वको उत्पन्न करनेवाले उन निरतिशय प्रकाशमय परमेश्वरके भजनेयोग्य तेजका ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियोंको सत्कर्मोंकी ओर प्रेरित करते हैं तथा जो भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोकरूप सच्चिदानन्दमय परब्रह्म हैं।[१]

तदनन्तर नीचे लिखे विनियोग-वाक्यका पाठ करे—

विश्वतश्चक्षुरिति भौवन ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो विश्वकर्मा देवता सूर्यप्रदक्षिणायां विनियोगः।

फिर नीचे लिखे मन्त्रसे अपने स्थानपर खड़े होकर सूर्यदेवकी एक बार प्रदक्षिणा करे—

ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः॥[२]

(यजु० १७। १९)

वे एकमात्र परमात्मा पृथ्वी और आकाशकी रचना करते समय धर्माधर्मरूप भुजाओं और पतनशील पञ्चमहाभूतोंसे संगत होते अर्थात् काम लेते हैं। तात्पर्य यह कि धर्माधर्मरूप निमित्त और पञ्चभूतरूप उपादान कारणोंसे अन्य साधनकी सहायता लिये बिना ही सबकी सृष्टि करते हैं। उनके सब ओर नेत्र हैं, सब ओर मुख हैं, सब ओर भुजाएँ हैं और सब ओर चरण हैं [अर्थात् सर्वत्र उनकी सभी इन्द्रियाँ हैं, अथवा सब प्राणी परमेश्वरके स्वरूप हैं; अतः उनके जो नेत्र आदि हैं, वे उनमें व्याप्त

१- इस मन्त्रका अर्थ ऐसा भी है—

सच्चिदानन्द, विराट्स्वरूप, सब संसारको उत्पन्न करनेवाले परमेश्वरके उस भजनेयोग्य तेजका हमलोग ध्यान करते हैं, जो हमलोगोंकी बुद्धियोंको अपने स्वरूपमें लगावें।

२- प्रदक्षिणाका पौराणिक श्लोक इस प्रकार है—

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च।
तानि तानि प्रणश्यन्ति प्रदक्षिणपदे पदे॥

परमात्माके ही नेत्र आदि हैं]।

इसके पश्चात् बैठकर निम्नांकित विनियोगका पाठ करे—

ॐ देवा गातुविद इति मनसस्पतिर्ऋषिर्विराडनुष्टुप्छन्दो वातो देवता जपनिवेदने विनियोगः।

फिर—

ॐ देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित। मनसस्पत इमं देव यजूः स्वाहा वाते धाः॥ (यजु० २।२१)

'हे यज्ञवेत्ता देवताओ ! आपलोग हमारे इस जपरूपी यज्ञको पूर्ण हुआ जानकर अपने गन्तव्य मार्गको पधारें। हे चित्तके प्रवर्तक परमेश्वर! मैं इस जप-यज्ञको आपके हाथमें अर्पण करता हूँ। आप इसे वायुदेवतामें स्थापित करें*।'

इस मन्त्रको पढ़कर नमस्कार करनेके अनन्तर—

अनेन यथाशक्तिकृतेन गायत्रीजपाख्येन कर्मणा भगवान् सूर्यनारायणः प्रीयतां न मम।

यह वाक्य पढ़े। इसके बाद—

उत्तमे शिखरे इति वामदेव ऋषिरनुष्टुप्छन्दो गायत्री देवता गायत्रीविसर्जने विनियोगः।

इस विनियोगको पढ़कर—

ॐ उत्तमे शिखरे देवी भूम्यां पर्वतमूर्धनि।
ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम्॥

(तै० आ० प्र० १० अ० ३०)

'हे गायत्री देवि ! अब तुम अपने उपासक ब्राह्मणोंके पाससे उनकी अनुमति लेकर भूमिपर स्थित जो मेरुनामक पर्वत है, उसकी चोटीपर

* वाते हि यज्ञोऽवतिष्ठते। तथा च श्रुतिः—वायुरेवाग्निस्तस्माद् यदैवाध्वर्युरुत्तमं कर्म करोत्यथैनमेवाप्येति।

विद्यमान जो सुरम्य शिखर है, वही तुम्हारा वासस्थान है; उसमें निवास करनेके लिये सुखपूर्वक जाओ।'

इस मन्त्रको पढ़कर गायत्री देवीका विसर्जन करे, फिर निम्नांकित वाक्य पढ़कर यह संध्योपासनकर्म परमेश्वरको समर्पित करे—

अनेन संध्योपासनाख्येन कर्मणा श्रीपरमेश्वरः प्रीयतां न मम। ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु।

फिर भगवान्‌का स्मरण करे—

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥
ॐ विष्णवे नमः॥ ॐ विष्णवे नमः॥ ॐ विष्णवे नमः॥

॥ श्रीविष्णुस्मरणात्परिपूर्णतास्तु॥

॥ इति॥

माहात्म्यसहित संध्याकालनिर्णय

उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका।
कनिष्ठा सूर्यसहिता प्रातःसंध्या त्रिधा स्मृता॥ १॥
मध्या मध्याह्ने॥ २॥
उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमा लुप्तभास्करा।
कनिष्ठा तारकोपेता सायंसंध्या त्रिधा स्मृता॥ ३॥
सन्ध्या येन न विज्ञाता सन्ध्या येनानुपासिता।
जीवन्नेव भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चाभिजायते॥

(देवीभागवत ११। १६। ६)

'जो द्विज संध्या नहीं जानता और संध्योपासन नहीं करता वह जीता हुआ ही शूद्र हो जाता है और मरनेपर कुत्तेकी योनिको प्राप्त होता है।'

सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु।
यदन्यत् कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत्॥

(दक्षस्मृति २। २०)

'संध्याहीन द्विज नित्य ही अपवित्र है और सम्पूर्ण धर्मकार्य करनेमें अयोग्य है। वह जो कुछ अन्य कर्म करता है उसका फल उसे नहीं मिलता।'

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥

(मनु० २। १०३)

'जो द्विज प्रातःकाल और सायंकालकी संध्या नहीं करता, उसे शूद्रकी भाँति द्विजातियोंके करनेयोग्य सभी कर्मोंसे अलग कर देना चाहिये।'

सन्ध्यामुपासते ये तु सततं शंसितव्रताः।
विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम्॥

(अत्रि)

'जो प्रशंसितव्रती सदा संध्योपासन करते हैं, उनके पाप नष्ट हो जाते हैं और वे सनातन ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं।'

यावन्तोऽस्यां पृथिव्यां हि विकर्मस्थास्तु वै द्विजाः।
तेषां वै पावनार्थाय सन्ध्या सृष्टा स्वयम्भुवा॥

(याज्ञवल्क्य)

'इस पृथ्वीपर निषिद्ध कर्म करनेवाले जितने भी द्विज हैं, उन सबको पवित्र करनेके लिये स्वयं ब्रह्माजीने संध्याका निर्माण किया।'

निशायां वा दिवा वापि यदज्ञानकृतं भवेत्।
त्रिकालसन्ध्याकरणात् तत्सर्वं हि प्रणश्यति॥

(याज्ञवल्क्य)

'रातमें या दिनमें जिस किसी समय अज्ञानके कारण जो भी अनुचित कर्म घटित हो जाते हैं, वे सब त्रिकाल-संध्या करनेसे नष्ट हो जाते हैं।'

सन्ध्यालोपस्य चाकर्ता स्नानशीलश्च यः सदा।
तं दोषा नोपसर्पन्ति गरुत्मन्तमिवोरगाः॥

(कात्यायन)

'जो कभी संध्याका लोप नहीं करता अर्थात् नित्य संध्या करता है और जो सदा स्नानशील है, उसके पास दोष उसी तरह नहीं रहते जैसे गरुडके सांनिध्यमें साँप।'

॥ श्रीहरिः ॥

तर्पण-विधि

[देवर्षिमनुष्यपितृतर्पण-विधि]

प्रातःकाल ब्राह्मीवेलाके पूर्व शयनसे उठकर शौचादिसे निवृत्त हो किसी नदी, सरोवर या कुएँपर ही अपनी सुविधाके अनुसार स्नान करके शुद्ध उज्ज्वल वस्त्र पहनकर पूर्वाभिमुख हो कुशासनपर बैठे। फिर तीन बार आचमन[१] करके संध्योपासना एवं नित्यहोम करनेके पश्चात् बायें और दायें हाथकी अनामिका अंगुलिमें **'पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ०**[२]'—इस मन्त्रको सम्पूर्णरूपसे पढ़ते हुए पवित्री (पैंती) धारण करे। फिर हाथमें त्रिकुश, यव, अक्षत और जल लेकर निम्नाङ्कितरूपसे संकल्प पढ़े—

ॐ विष्णवे नमः ३। हरिः ॐ तत्सदद्यैतस्य श्रीब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशे कलियुगे कलिप्रथमचरणे अमुकसंवत्सरे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रोत्पन्नः अमुकशर्मा (वर्मा, गुप्तः) अहं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं देवर्षिमनुष्यपितृतर्पणं करिष्ये।

१- यहाँ आचमनका प्रकार बतलाया जाता है—'ॐ केशवाय नमः स्वाहा, ॐ नारायणाय नमः स्वाहा, ॐ माधवाय नमः स्वाहा'—इन तीन मन्त्रोंको पढ़कर प्रत्येकसे एक-एक बार (कुल तीन बार) एक-एक माशा जल पीना चाहिये; फिर 'ॐ गोविन्दाय नमः'—इस मन्त्रसे दायाँ हाथ धोकर 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—इस मन्त्रसे अपने ऊपर प्रदक्षिणक्रमसे जल सींचे।

२- ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम्॥

'हे पवित्र करनेवाले युगल कुशमय पवित्रको ! तुम दोनों यज्ञसे सम्बन्ध रखनेवाले हो।'

तदनन्तर एक ताँबे अथवा चाँदीके पात्रमें[१] श्वेत चन्दन, चावल, सुगन्धित पुष्प और तुलसीदल रखे, फिर उस पात्रके ऊपर एक हाथ या प्रादेशमात्र लम्बे तीन कुश रखे, जिनका अग्रभाग पूर्वकी ओर रहे। इसके बाद उस पात्रमें तर्पणके लिये जल भर दे; फिर उसमें रखे हुए तीनों कुशोंको तुलसीसहित सम्पुटाकार दायें हाथमें लेकर बायें हाथसे उसे ढँक ले और निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़ते हुए देवताओंका आवाहन करे।

ॐ विश्वेदेवास आगत शृणुता म इम ꣳ हवम्। एदं बर्हिर्निषीदत॥ (यजु० ७। ३४)

हे विश्वेदेवगण ! आपलोग यहाँ पदार्पण करें, हमारे प्रेमपूर्वक किये हुए इस आवाहनको सुनें और इस कुशके आसनपर विराजमान हों।

विश्वेदेवाः शृणुतेम ꣳ हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यविष्ठ।
ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम्॥

(यजु० ३३। ५३)

हे विश्वेदेवगण ! आपलोगोंमेंसे जो अन्तरिक्षमें हों, जो द्युलोक (स्वर्ग)-के समीप हों तथा अग्निके समान जिह्वावाले एवं यजन करने योग्य हों, वे सब हमारे इस आवाहनको सुनें और इस कुशासनपर बैठकर तृप्त हों।

आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः।
ये तर्पणेऽत्र विहिताः सावधाना भवन्तु ते॥

जिनका इस तर्पणमें वेदविहित अधिकार है, वे महान् बलवाले महाभाग विश्वेदेवगण यहाँ आवें और सावधान हो जायँ।

इस प्रकार आवाहनकर कुशका आसन दे और उन पूर्वाग्र कुशोंद्वारा[२]

१- तर्पणमें सोना, चाँदी, ताँबा अथवा काँसका पात्र होना चाहिये, मिट्टीका नहीं, जैसा कि पितामहका वचन है—

हैमं रौप्यमयं पात्रं ताम्रकांस्यसमुद्भवम्। पितॄणां तर्पणे पात्रं मृण्मयं तु परित्यजेत्॥

२- देवताओंका तर्पण कुशके अग्रभागसे, मनुष्योंका मध्यभागसे और पितरोंका मूलाग्र एवं दक्षिणाग्रभागसे होना चाहिये। इसी प्रकार देवतर्पणमें पूर्वाभिमुख, मनुष्यतर्पणमें उत्तराभिमुख और पितृतर्पणमें दक्षिणाभिमुख रहना चाहिये। दक्षस्मृतिमें लिखा है—

दायें हाथकी समस्त अंगुलियोंके अग्रभाग अर्थात् देवतीर्थसे ब्रह्मादि देवताओंके लिये पूर्वोक्त पात्रमेंसे एक-एक* अञ्जलि चावलमिश्रित जल लेकर दूसरे पात्रमें गिरावे और निम्नांकितरूपसे उन-उन देवताओंके नाममन्त्र पढ़ता रहे—

देवतर्पण

ॐ ब्रह्मा तृप्यताम्। ॐ विष्णुस्तृप्यताम्। ॐ रुद्रस्तृप्यताम्। ॐ प्रजापतिस्तृप्यताम्। ॐ देवास्तृप्यन्ताम्। ॐ छन्दांसि तृप्यन्ताम्। ॐ वेदास्तृप्यन्ताम्। ॐ ऋषयस्तृप्यन्ताम्। ॐ पुराणाचार्यास्तृप्यन्ताम्। ॐ गन्धर्वास्तृप्यन्ताम्। ॐ इतराचार्यास्तृप्यन्ताम्। ॐ संवत्सरः सावयवस्तृप्यताम्। ॐ देव्यस्तृप्यन्ताम्। ॐ अप्सरसस्तृप्यन्ताम्। ॐ देवानुगास्तृप्यन्ताम्। ॐ नागास्तृप्यन्ताम्। ॐ सागरास्तृप्यन्ताम्। ॐ पर्वतास्तृप्यन्ताम्। ॐ सरितस्तृप्यन्ताम्। ॐ मनुष्यास्तृप्यन्ताम्। ॐ यक्षास्तृप्यन्ताम्। ॐ रक्षांसि तृप्यन्ताम्। ॐ पिशाचास्तृप्यन्ताम्। ॐ सुपर्णास्तृप्यन्ताम्। ॐ भूतानि

प्रादेशमात्रमुद्धृत्य सलिलं प्राङ्मुखः सुरान्।
उदङ् मनुष्यांस्तृप्येत्तु पितॄन् दक्षिणतस्तथा॥
अग्रैस्तु तर्पयेद्देवान् मनुष्यान् कुशमध्यतः।
पितृंस्तु कुशमूलाग्रैर्विधिः कौशी यथाक्रमम्॥

* देवताओंको एक-एक, मनुष्योंको दो-दो और पितरोंको तीन-तीन अञ्जलि जल देना चाहिये। स्त्रियोंमें 'माता, पितामही और प्रपितामही आदिको तीन-तीन, सौतेली माँ और आचार्य-पत्नीको दो-दो तथा अन्य सब स्त्रियोंको एक-एक अञ्जलि जल देना चाहिये। व्यासजी कहते हैं—

एकैकमञ्जलिं देवा द्वौ द्वौ तु सनकादयः।
अर्हन्ति पितरस्त्रींस्त्रीन् स्त्रिय एकैकमञ्जलिम्॥

सांख्यायनः—मातृमुख्यास्तु यास्तिस्रस्तासां त्रींस्त्रीञ्जलाञ्जलीन्।
सपत्न्याचार्यपत्नीनां द्वौ द्वौ दद्याज्जलाञ्जली॥

तृप्यन्ताम्। ॐ पशवस्तृप्यन्ताम्। ॐ वनस्पतयस्तृप्यन्ताम्। ॐ ओषधयस्तृप्यन्ताम्। ॐ भूतग्रामश्चतुर्विधस्तृप्यताम्।

ऋषितर्पण

इसी प्रकार निम्नांकित मन्त्रवाक्योंसे मरीचि आदि ऋषियोंको भी एक-एक अञ्जलि जल दे—

ॐ मरीचिस्तृप्यताम्। ॐ अत्रिस्तृप्यताम्। ॐ अङ्गिरा-स्तृप्यताम्। ॐ पुलस्त्यस्तृप्यताम्। ॐ पुलहस्तृप्यताम्। ॐ क्रतु-स्तृप्यताम्। ॐ वसिष्ठस्तृप्यताम्। ॐ प्रचेतास्तृप्यताम्। ॐ भृगुस्तृप्यताम्। ॐ नारदस्तृप्यताम्।

दिव्यमनुष्यतर्पण

इसके बाद जनेऊको मालाकी भाँति गलेमें धारणकर [अर्थात् निवीती* हो] पूर्वोक्त कुशोंको दायें हाथकी कनिष्ठिकाके मूल-भागमें उत्तराग्र रखकर स्वयं उत्तराभिमुख हो निम्नांकित मन्त्र-वचनोंको दो-दो बार पढ़ते हुए दिव्यमनुष्योंके लिये प्रत्येकको दो-दो अञ्जलि यवसहित जल प्राजापत्यतीर्थ (कनिष्ठिकाके मूलभाग)-से अर्पण करे—

ॐ सनकस्तृप्यताम्॥ २॥ ॐ सनन्दनस्तृप्यताम्॥ २॥

---

* देवतर्पण तथा अन्य कार्योंमें यज्ञोपवीत बायें कंधेपर रहता है, इसकी उपवीत संज्ञा है। कंठमें मालाकी भाँति किया हुआ यज्ञोपवीत निवीत कहलाता है—'निवीतं कण्ठलम्बनम्।' (औशनसस्मृति) दिव्यमनुष्योंके तर्पणमें यज्ञोपवीतको निवीतभावसे ही रखना चाहिये—

निवीती हन्तकारेण मनुष्यांस्तर्पयेदथ। (वाचस्पति)

पितृकार्यमें यज्ञोपवीत दायें कंधेपर रहता है, इसको प्राचीनावीत या अपसव्य कहते हैं—

सव्यबाहुं समुद्धृत्य दक्षिणेन धृतं द्विजैः। प्राचीनावीतमित्युक्तं पित्र्ये कर्मणि धारयेत्॥

(औशनसस्मृति)

ॐ सनातनस्तृप्यताम्॥ २॥ ॐ कपिलस्तृप्यताम्॥ २॥
ॐ आसुरिस्तृप्यताम्॥ २॥ ॐ वोढुस्तृप्यताम्॥ २॥
ॐ पञ्चशिखस्तृप्यताम्॥ २॥

दिव्यपितृतर्पण

तत्पश्चात् उन कुशोंको द्विगुण-भुग्न करके उनका मूल और अग्रभाग दक्षिणकी ओर किये हुए ही उन्हें अँगूठे और तर्जनीके बीचमें रखे और स्वयं दक्षिणाभिमुख हो बायें घुटनेको पृथ्वीपर रखकर अपसव्य-भावसे (जनेऊको दायें कंधेपर रखकर) पूर्वोक्त पात्रस्थ जलमें काला तिल* मिलाकर पितृतीर्थसे (अँगूठा और तर्जनीके मध्यभागसे) दिव्य पितरोंके लिये निम्नांकित मन्त्र-वाक्योंको पढ़ते हुए तीन-तीन अञ्जलि जल दे। यथा—

ॐ कव्यवाडनलस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तस्मै स्वधा नमः॥ ३॥ ॐ सोमस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तस्मै स्वधा नमः॥ ३॥ ॐ यमस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तस्मै स्वधा नमः॥ ३॥ ॐ अर्यमा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तस्मै स्वधा नमः॥ ३॥ ॐ अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा)

---

* तिलसहित तर्पणका माहात्म्य वायुपुराणमें यों लिखा है—

तिलदर्भैस्तु संयुक्तं श्रद्धया यत् प्रदीयते। तत्सर्वममृतं भूत्वा पितृणामुपतिष्ठते॥

'तिल और कुशाके साथ श्रद्धासे जो कुछ दिया जाता है, वह अमृतरूप होकर पितरोंको प्राप्त होता है।'

याज्ञवल्क्यने देवताओं, दिव्यमनुष्यों और पितरोंके लिये क्रमशः श्वेत, शबल और काले तिलका उपयोग बतलाया है—

शुक्लैस्तु तर्पयेद्देवान् मनुष्याञ्छबलैस्तिलैः। पितॄंस्तु तर्पयेत् कृष्णैस्तर्पणे सर्वदा द्विजैः॥

अग्निपुराणमें जीवत्पितृक (जिसका पिता जीवित हो उस)-के द्वारा तिलतर्पणका निषेध किया गया है—

दर्शश्राद्धं गयाश्राद्धं तिलैस्तर्पणमेव च। न जीवत्पितृको भूप कुर्यात् कृत्वाघमाप्नुयात्॥

तेभ्यः स्वधा नमः॥ ३॥ ॐ सोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तेभ्यः स्वधा नमः॥ ३॥ ॐ बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तेभ्यः स्वधा नमः॥ ३॥

यमतर्पण

इसी प्रकार निम्नलिखित मन्त्र-वाक्योंको पढ़ते हुए चौदह यमोंके लिये भी पितृतीर्थसे ही तीन-तीन अञ्जलि तिलसहित जल दे—

ॐ यमाय नमः॥ ३॥ ॐ धर्मराजाय नमः॥ ३॥ ॐ मृत्यवे नमः॥ ३॥ ॐ अन्तकाय नमः॥ ३॥ ॐ वैवस्वताय नमः॥ ३॥ ॐ कालाय नमः॥ ३॥ ॐ सर्वभूतक्षयाय नमः॥ ३॥ ॐ औदुम्बराय नमः॥ ३॥ ॐ दध्नाय नमः॥ ३॥ ॐ नीलाय नमः॥ ३॥ ॐ परमेष्ठिने नमः॥ ३॥ ॐ वृकोदराय नमः॥ ३॥ ॐ चित्राय नमः॥ ३॥ ॐ चित्रगुप्ताय नमः॥ ३॥

मनुष्यपितृतर्पण

इसके पश्चात् निम्नांकित मन्त्रसे पितरोंका आवाहन करे—

ॐ उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्तः समिधीमहि।
उशन्नुशत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे॥

(यजु० १९। ७०)

हे अग्ने ! तुम्हारे यजनकी कामना करते हुए हम तुम्हें स्थापित करते हैं। यजनकी ही इच्छा रखते हुए तुम्हें प्रज्वलित करते हैं। हविष्यकी इच्छा रखते हुए तुम भी तृप्तिकी कामनावाले हमारे पितरोंको हविष्य भोजन करनेके लिये बुलाओ।

आ यन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः।
अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्॥

(यजु० १९। ५८)

हमारे सोमपान करनेयोग्य अग्निष्वात्त[१] पितृगण देवताओंके साथ गमन करनेयोग्य मार्गोंसे यहाँ आवें और इस यज्ञमें स्वधासे तृप्त होकर हमें मानसिक उपदेश दें तथा वे हमारी रक्षा करें।

तदनन्तर अपने पितृगणोंका[२] नाम-गोत्र आदि उच्चारण करते हुए प्रत्येकके लिये पूर्वोक्त विधिसे ही तीन-तीन अञ्जलि तिलसहित जल दे। यथा—

अमुकगोत्रः अस्मत्पिता[३] (बाप) अमुकशर्मा[४]

१- जिनके शरीरका अग्निने आस्वादन किया है अर्थात् इस लोकमें मृत्युके पश्चात् जिनका शरीर दग्ध किया गया है, वे अग्निष्वात्त हैं।

२- तर्पणमें पितरोंका क्रम यों समझना चाहिये—

ताताम्बात्रितयं सपत्नजननी मातामहादित्रयं
सस्त्रिस्त्रीतनयादि तातजननीस्वभ्रातरः सस्त्रियः।
ताताम्बात्मभगिन्यपत्यधवयुग् जायापिता सद्गुरुः
शिष्याप्ताः पितरो महालयविधौ तीर्थे तथा तर्पणे॥

पिता, पितामह, प्रपितामह। माता, पितामही, प्रपितामही। सौतेली माता। मातामह, प्रमातामह, वृद्धप्रमातामह। मातामही, प्रमातामही, वृद्धप्रमातामही। पत्नी, पुत्र (सपत्नीक एवं पुत्रसहित) पति-पुत्रसहित पुत्री। पत्नी-पुत्रादिसहित पितृव्य (चाचा)। मातुल (मामा)। स्वभ्राता तथा सौतेला भाई। पति-पुत्रादिसहित फूआ तथा मौसी। बहिन तथा सौतेली बहिन। पत्नी आदिसहित श्वशुर, सद्गुरु, शिष्य तथा आप्तपुरुष—ये सभी इसी क्रमसे महालयविधि (पितृपक्ष-श्राद्ध) तथा तीर्थश्राद्ध एवं तर्पणके पितर निश्चित किये गये हैं।

३- पारस्कर गृह्यसूत्रके अनुसार क्रमशः गोत्र-सम्बन्ध-नामका उच्चारण करना चाहिये।

४- बौधायनः—शर्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु।
गुप्तान्तं चैव वैश्यस्य दासान्तं शूद्रजन्मनः॥
चतुर्णामपि वर्णानां गोत्रत्वे पितृगोत्रता।
पितृगोत्रं कुमारीणामूढानां भर्तृगोत्रता॥

वृद्धयाज्ञवल्क्यः—तृप्यतामिति वक्तव्यं नाम्ना तु प्रणवादिना।
आवाह्य पूर्ववन्मन्त्रैरास्तीर्य च कुशांश्च तान्॥

वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुक गोत्रः अस्मत्पितामहः (दादा) अमुकशर्मा रुद्ररूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुक गोत्रः अस्मत्प्रपितामहः (परदादा) अमुकशर्मा आदित्यरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं[1] वा) तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रा अस्मन्माता अमुकी देवी दा[2] वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रा अस्मत्पितामही (दादी) अमुकी देवी दा रुद्ररूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रा अस्मत्प्रपितामही (परदादी) अमुकी देवी दा आदित्यरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रा अस्मत्सापत्नमाता (सौतेली माँ) अमुकी देवी दा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥ ३ ॥

इसके बाद निम्नांकित नौ मन्त्रोंको पढ़ते हुए पितृतीर्थसे जल गिराता रहे—

ॐ उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥
(यजु० १९ । ४९)

इस लोकमें स्थित, परलोकमें स्थित और मर्त्यलोकमें स्थित सोमभागी पितृगण क्रमसे ऊर्ध्वलोकोंको प्राप्त हों। जो वायुरूपको प्राप्त हो चुके हैं, वे शत्रुहीन सत्यवेत्ता पितर आवाहन करनेपर [यहाँ उपस्थित हों] हमलोगोंकी रक्षा करें।

१- इसी प्रकार अन्यत्र भी 'गंगाजल' से तर्पण करते समय योजना कर लेनी चाहिये।

२- गोभिलसूत्रे—स्त्रीणां दान्तं नाम ज्ञेयम्।

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः।
तेषां वय ँ सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम॥

(यजु० १९। ५०)

अंगिराके कुलमें, अथर्व मुनिके वंशमें तथा भृगुकुलमें उत्पन्न हुए नवीन गतिवाले एवं सोमपान करनेयोग्य जो हमारे पितर इस समय पितृलोकको प्राप्त हैं, उन यज्ञमें पूजनीय पितरोंकी सुन्दर बुद्धिमें तथा उनके कल्याणकारी मनमें हम स्थित रहें [अर्थात् उनकी मन-बुद्धिमें हमारे कल्याणकी भावना बनी रहे]।

आ यन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः।
अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्॥

(यजु० १९। ५८)

इस मन्त्रका अर्थ पहले (पृष्ठ २९ में) आ चुका है।

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्। स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन्॥ (यजु० २। ३४)

हे जल ! तुम स्वादिष्ट अन्नके सारभूत रस, रोग—मृत्युको दूर करनेवाले घी और सब प्रकारका कष्ट मिटानेवाले दुग्धका वहन करते हो तथा सब ओर प्रवाहित होते हो, अतएव तुम पितरोंके लिये हवि:स्वरूप हो, इसलिये मेरे पितरोंको तृप्त करो।

पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। अक्षन् पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम्॥

(यजु० १९। ३६)

स्वधा (अन्न)-के प्रति गमन करनेवाले पितरोंको स्वधासंज्ञक* अन्न प्राप्त हो, उन पितरोंको हमारा नमस्कार है। स्वधाके प्रति जानेवाले पितामहोंको स्वधा प्राप्त हो, उन्हें हमारा नमस्कार है। स्वधाके प्रति गमन

* 'स्वधा वै पितृणामन्नम्' इति श्रुतेः।

करनेवाले प्रपितामहोंको स्वधा प्राप्त हो, उन्हें हमारा नमस्कार है। पितर पूर्ण आहार कर चुके, पितर आनन्दित हुए, पितर तृप्त हुए। हे पितरो! अब आपलोग [आचमन आदि करके] शुद्ध हों।

ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ २ उ च न प्रविद्म।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञꣳ सुकृतं जुषस्व॥
(यजु० १९। ६७)

जो पितर इस लोकमें वर्तमान हैं और जो इस लोकमें नहीं [किंतु पितृलोकमें विद्यमान] हैं तथा जिन पितरोंको हम जानते हैं और जिनको [स्मरण न होनेके कारण] नहीं जानते हैं, वे सभी पितर जितने हैं, उन सबको हे जातवेदा—अग्निदेव ! तुम जानते हो। [पितरोंके निमित्त दी जानेवाली] स्वधाके द्वारा तुम इस श्रेष्ठ यज्ञका सेवन करो—इसे सफल बनाओ !

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥
(यजु० १३। २७)

यज्ञकी रक्षा करनेवाले यजमानके लिये वायु मधु (पुष्परसमकरन्द)-की वर्षा करती है। बहनेवाली नदियाँ मधुके समान मधुर जलका स्रोत बहाती हैं। समस्त ओषधियाँ हमारे लिये मधुर रससे युक्त हों।

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳ रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता॥ (यजु० १३। २८)

हमारे रात-दिन सभी मधुमय हों। पिताके समान पालन करनेवाला द्युलोक हमारे लिये मधुमय—अमृतमय हो। माताके समान पोषण करनेवाली पृथिवीकी धूलि हमारे लिये मधुमयी हो।

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ २ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥ (यजु० १३। २९) **ॐ मधु। मधु। मधु। तृप्यध्वम्। तृप्यध्वम्। तृप्यध्वम्।**

वनस्पति और सूर्य भी हमारे लिये मधुमान् (मधुर रससे युक्त) हों हमारी समस्त गौएँ माध्वी—मधुके समान दूध देनेवाली हों।

फिर नीचे लिखे मन्त्रका पाठमात्र करे—

ॐ नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृह्मन्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्मैतद्वः पितरो वास आधत्त॥ (यजु० २। ३२)

हे पितृगण ! तुमसे सम्बन्ध रखनेवाली रसस्वरूप वसन्त-ऋतुको नमस्कार है, शोषण करनेवाले ग्रीष्म-ऋतुको नमस्कार है, जीवनस्वरूप वर्षा-ऋतुको नमस्कार है, स्वधारूप शरद्-ऋतुको नमस्कार है, प्राणियोंके लिये घोर प्रतीत होनेवाली हेमन्त-ऋतुको नमस्कार है, क्रोधस्वरूप शिशिर-ऋतुको नमस्कार है। [अर्थात् तुमसे सम्बन्ध रखनेवाली सभी ऋतुएँ तुम्हारी कृपासे सर्वथा अनुकूल होकर सबको लाभ पहुँचानेवाली हों।] हे षड्-ऋतुरूप* पितरो! तुम हमें [साध्वी पत्नी और सत्पुत्र आदिसे युक्त] उत्तम गृह प्रदान करो। हे पितृगण! इन प्रस्तुत दातव्य वस्तुओंको हम तुम्हें अर्पण करते हैं, तुम्हारे लिये यह (सूत्ररूप) वस्त्र है, इसे धारण करो।

द्वितीय गोत्रतर्पण

इसके बाद द्वितीय गोत्र मातामह आदिका तर्पण करे, यहाँ भी पहलेकी ही भाँति निम्नलिखित वाक्योंको तीन-तीन बार पढ़कर तिलसहित जलकी तीन-तीन अञ्जलियाँ पितृतीर्थसे दे। यथा—

अमुकगोत्रः अस्मन्मातामहः (नाना) अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तस्मै स्वधा नमः॥ ३ ॥ अमुकगोत्रः अस्मत्प्रमातामहः (परनाना) अमुकशर्मा रुद्ररूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः॥ ३ ॥ अमुकगोत्रः अस्मद्वृद्धप्रमातामहः (बूढ़े परनाना) अमुकशर्मा आदित्यरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः॥ ३ ॥ अमुकगोत्रा अस्मन्मातामही (नानी) अमुकी देवी दा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै

* 'षड् वा ऋतवः पितरः' इति श्रुतेः।

स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रा अस्मत्प्रमातामही (परनानी) अमुकी देवी दा रुद्ररूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रा अस्मद्वृद्धप्रमातामही (बूढ़ी परनानी) अमुकी देवी दा आदित्यरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥ ३ ॥

पत्न्यादितर्पण

अमुकगोत्रा अस्मत्पत्नी (भार्या) अमुकी देवी दा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥ १ ॥ अमुकगोत्रः अस्मत्सुतः (बेटा) अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रा अस्मत्कन्या (बेटी) अमुकी देवी दा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥ १ ॥ अमुकगोत्रः अस्मत्पितृव्यः (पिताके भाई) अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रः अस्मन्मातुलः (मामा) अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रः अस्मद्भ्राता (अपना भाई) अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रः अस्मत्सापत्नभ्राता (सौतेला भाई) अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रा अस्मत्पितृभगिनी (बुआ) अमुकी देवी दा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥ १ ॥ अमुक गोत्रा अस्मन्मातृभगिनी (मौसी) अमुकी देवी दा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥ १ ॥ अमुकगोत्रा अस्मदात्मभगिनी (अपनी बहिन) अमुकी देवी दा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥ १ ॥ अमुकगोत्रा अस्मत्सापत्नभगिनी (सौतेली बहिन) अमुकी देवी दा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥ १ ॥ अमुकगोत्रः अस्मच्छ्वशुरः (श्वशुर) अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं

जलं तस्मै स्वधा नमः॥ ३ ॥ अमुकगोत्रः अस्मद्गुरुः अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रा अस्मदाचार्यपत्नी अमुकी देवी दा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥ २ ॥ अमुकगोत्रः अस्मच्छिष्यः अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रः अस्मत्सखा अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रः अस्मदाप्तपुरुषः अमुकशर्मा वसुरूप-स्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥

इसके बाद सव्य होकर पूर्वाभिमुख हो नीचे लिखे श्लोकोंको पढ़ते हुए जल गिरावे—

देवासुरास्तथा यक्षा नागा गन्धर्वराक्षसाः।
पिशाचा गुह्यकाः सिद्धाः कूष्माण्डास्तरवः खगाः॥
जलेचरा भूनिलया वाय्वाधाराश्च जन्तवः।
प्रीतिमेते प्रयान्त्वाशु मद्दत्तेनाम्बुनाखिलाः॥

देवता, असुर, यक्ष, नाग, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, कूष्मांड, वृक्षवर्ग, पक्षी, जलचर तथा थलचर जीव और वायुके आधारपर रहनेवाले जन्तु—ये सभी मेरे दिये हुए जलसे शीघ्र तृप्त हों।

इसके बाद अपसव्य होकर दक्षिणाभिमुख* हो नीचे लिखे हुए श्लोकोंको पढ़कर पितृतीर्थसे जल गिरावे—

नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिताः।
तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिलं मया॥
येऽबान्धवा बान्धवाश्च येऽन्यजन्मनि बान्धवाः।
ते तृप्तिमखिला यान्तु यश्चास्मत्तोऽभिवाञ्छति॥
ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः।
तेषां हि दत्तमक्षय्यमिदमस्तु तिलोदकम्॥

* पारस्कर-गृह्यसूत्र, तर्पण-प्रयोगमें अपसव्य होकर तर्पणका विधान है।

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः।
तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः॥
अतीतकुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनाम्।
आब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तु तिलोदकम्॥

जो समस्त नरकों तथा वहाँकी यातनाओंमें पड़े-पड़े दुःख भोग रहे हैं, उनको पुष्ट तथा शान्त करनेकी इच्छासे मैं यह जल देता हूँ। जो मेरे बान्धव न रहे हों, जो इस जन्ममें बान्धव रहे हों अथवा किसी दूसरे जन्ममें मेरे बान्धव रहे हों, वे सब तथा इनके अतिरिक्त भी जो मुझसे जल पानेकी इच्छा रखते हों, वे भी मेरे दिये हुए जलसे तृप्त हों। जो मेरे कुलमें पिंडदान और स्त्री-पुत्रसे रहित हों, उनके लिये मेरे द्वारा दिया गया यह तिलमिश्रित जल अक्षय हो।

ब्रह्माजीसे लेकर कीटोंतक जितने जीव हैं, वे तथा देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य और माता, नाना आदि पितृगण—ये सभी तृप्त हों, मेरे कुलकी बीती हुई करोड़ों पीढ़ियोंमें उत्पन्न हुए जो-जो पितर ब्रह्मलोक-पर्यन्त सात द्वीपोंके भीतर कहीं भी निवास करते हों, उनकी तृप्तिके लिये मेरा दिया हुआ यह तिलमिश्रित जल उन्हें प्राप्त हो।

वस्त्र-निष्पीडन*

तत्पश्चात् वस्त्रको चार आवृत्ति लपेटकर जलमें डुबावे और बाहर

---

* वस्त्र-निष्पीडनके विषयमें स्मृतियोंके वचन—

योगियाज्ञवल्क्यः—वस्त्रनिष्पीडितं तोयं स्नातस्योच्छिष्टभागिनः।
भागधेयं श्रुतिः प्राह तस्मान्निष्पीडयेत् स्थले॥

वस्त्र निचोड़नेसे जो जल निकलता है, वह स्नान करनेवाले पुरुषके उच्छिष्टभागी जीवोंका भाग है, ऐसा श्रुति कहती है। अतः उसे स्थलमें निचोड़ना चाहिये।

वृद्धयोगी—यावदेतानृषींश्चैव पितॄंश्चापि न तर्पयेत्।
तावन्न पीडयेद्वस्त्रं येन स्नातो भवेन्नरः॥

जबतक इन ऋषियों और पितरोंका तर्पण न कर ले, तबतक मनुष्य उस वस्त्रको न निचोड़े, जिसे पहनकर उसने स्नान किया हो।

स्मृत्यन्तरे—वस्त्रं चतुर्गुणीकृत्य पीडयेच्च जलाद् बहिः।
वामकोष्ठे विनिक्षिप्य द्विराचम्य शुचिर्भवेत्॥

ले आकर निम्नांकित मन्त्रको पढ़ते हुए अपसव्यभावसे अपने बायें भागमें भूमिपर उस वस्त्रको निचोड़े। (पवित्रकको तर्पण किये हुए जलमें छोड़ दे। यदि घरमें किसी मृत पुरुषका वार्षिक श्राद्ध आदि कर्म हो तो वस्त्र-निष्पीडन नहीं करना चाहिये) वस्त्र-निष्पीडनका मन्त्र यह है—

ये चास्माकं कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः।
ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम्॥

भीष्म-तर्पण

इसके बाद दक्षिणाभिमुख हो पितृतर्पणके समान हाथमें कुश धारण किये हुए ही बालब्रह्मचारी भक्तप्रवर भीष्मके लिये पितृतीर्थसे तिलमिश्रित जलके द्वारा तर्पण करे।

उनके लिये तर्पणका मन्त्र निम्नांकित श्लोक है—

वैयाघ्रपदगोत्राय साङ्कृतिप्रवराय च।
गङ्गापुत्राय भीष्माय प्रदास्येऽहं तिलोदकम्॥
अपुत्राय ददाम्येतत्सलिलं भीष्मवर्मणे।

अर्घ्यदान

तदनन्तर यज्ञोपवीत बायें कंधेपर करके पूर्वाभिमुख होकर शुद्ध जलसे आचमन करके प्राणायाम करे। फिर एक पात्रमें शुद्ध जल भरकर उसके मध्य-भागमें अनामिकासे षड्दल-कमल* बनावे और उसमें श्वेत चन्दन,

---

वस्त्रको चार आवृत्ति लपेटकर उसे जलसे बाहर ले जाकर निचोड़े। फिर उसे बायीं कलाईपर रखकर दो बार आचमन करके पवित्र हो जाय।

* षड्दल-कमल

अक्षत, पुष्प तथा तुलसीदल छोड़ दे। फिर दूसरे पात्रमें चन्दनसे षड्दल-कमल बनाकर उसमें पूर्वादि दिशाके क्रमसे ब्रह्मादि देवताओंका आवाहन-पूजन करे तथा पहले पात्रके जलसे उन पूजित देवताओंके लिये अर्घ्य अर्पण करे। अर्घ्यदानके मन्त्र निम्नांकित हैं—

ॐ ब्रह्म* जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः। स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः॥ (यजु० १३। ३) **ॐ ब्रह्मणे नमः। ब्रह्माणं पूजयामि॥**

सर्वप्रथम पूर्व दिशासे प्रकट होनेवाले आदित्यरूप ब्रह्मने भूगोलके मध्यभागसे आरम्भ करके इन समस्त सुन्दर कान्तिवाले लोकोंको अपने प्रकाशसे व्यक्त किया है तथा वह अत्यन्त कमनीय आदित्य इस जगत्की निवासस्थानभूत अवकाशयुक्त दिशाओंको, विद्यमान—मूर्तपदार्थके स्थानोंको और अमूर्त वायु आदिके उत्पत्तिस्थानोंको भी प्रकाशित करता है।

ॐ इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पा ँ सुरे स्वाहा॥ (यजु० ५। १५) **ॐ विष्णवे नमः। विष्णुं पूजयामि॥**

सर्वव्यापी त्रिविक्रम (वामन) अवतारधारी भगवान् विष्णुने इस चराचर जगत्को विभक्त करके [चरणोंसे] आक्रान्त किया है। उन्होंने पृथ्वी, आकाश और द्युलोक—इन तीनों स्थानोंमें अपना चरण स्थापित किया है [अथवा उक्त तीनों स्थानोंमें वे क्रमशः अग्नि, वायु तथा सूर्यरूपसे स्थित हैं], इन विष्णुभगवान्के चरणमें समस्त विश्व अन्तर्भूत है। हम इनके निमित्त स्वाहा (हविष्यदान) करते हैं।

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः। (यजु० १६। १) **ॐ रुद्राय नमः। रुद्रं पूजयामि॥**

हे रुद्र ! आपके क्रोध और बाणको नमस्कार है तथा आपकी दोनों भुजाओंको नमस्कार है।

* अत्र ब्रह्मशब्दोपादानाल्लिङ्गाद् ब्रह्मणः स्तवनम्।

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ (यजु० ३६। ३) **ॐ सवित्रे नमः। सवितारं पूजयामि॥**

हम स्थावर-जंगमरूप सम्पूर्ण विश्वको उत्पन्न करनेवाले उन निरतिशय प्रकाशमय सूर्यस्वरूप परमेश्वरके भजनेयोग्य तेजका ध्यान करते हैं, जो कि हमारी बुद्धियोंको सत्कर्मोंकी ओर प्रेरित करते रहते हैं।

ॐ मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि। द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम्॥ (यजु० ११। ६२) **ॐ मित्राय नमः। मित्रं पूजयामि॥**

मनुष्योंका पोषण करनेवाले दीप्तिमान् मित्रदेवताका यह रक्षण-कार्य सनातन, यशरूपसे प्रसिद्ध, विचित्र तथा श्रवण करनेके योग्य है।

ॐ इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय। त्वामवस्युरा चके॥ (यजु० २१। १) **ॐ वरुणाय नमः। वरुणं पूजयामि॥**

हे संसार-सागरके अधिपति वरुणदेव! अपनी रक्षाके लिये मैं आपको बुलाना चाहता हूँ, आप मेरे इस आवाहनको सुनिये और [यहाँ शीघ्र पधारकर] आज हमें सब प्रकारसे सुखी कीजिये।

सूर्योपस्थान

इसके बाद निम्नांकित मन्त्र पढ़कर सूर्योपस्थान (सूर्यको प्रणाम एवं प्रार्थना) करे—

ॐ अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ २ अनु। भ्राजन्तो अग्नयो यथा। उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय। सूर्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि भ्राजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम्॥ ह ँ सः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥ (यजु० ८। ४०, १०। २४)

प्रज्ञाकी हेतुभूत एवं सम्पूर्ण पदार्थोंका ज्ञान करानेवाली इन सूर्यदेवकी किरणें समस्त प्राणियोंके भीतर विशेषरूपसे अनुगत (व्याप्त) देखी गयी हैं,

जैसे देदीप्यमान अग्नि सर्वत्र व्याप्त देखी जाती है। हे सोम! तुम उपयामपात्रद्वारा गृहीत हो, मैं दीप्तिमान् सूर्यदेवके निमित्त तुम्हें ग्रहण करता हूँ। यह तुम्हारा स्थान है; मैं दीप्तिशाली भगवान् सूर्यदेवके लिये तुम्हें इस स्थानपर रखता हूँ। हे अत्यन्त देदीप्यमान सूर्यदेव! जिस प्रकार तुम सब देवताओंमें अत्यन्त प्रकाशमान हो उसी प्रकार तुम्हारे प्रकाशसे मैं भी मनुष्योंमें अत्यन्त प्रकाशमान होऊँ। हे सूर्यभगवान् ! आप अहंकारका नाश करनेवाले (हंस), प्रकाशमें गमन करनेवाले (शुचिषत्), अपनेमें सबको निवासित करनेवाले (वसु), वायुरूपसे अन्तरिक्षमें गमन करनेवाले (अन्तरिक्षसत्), देवोंको बुलानेवाले (होता), अग्निरूपसे वेदीपर स्थित होनेवाले (वेदिषत्), सबके पूजनीय (अतिथि), यज्ञशालामें आहवनीयादि अग्निरूपसे प्राप्त होनेवाले (दुरोणसत्), प्राणरूपसे मनुष्योंमें विचरनेवाले (नृषत्), श्रेष्ठ स्थानोंमें गमन करनेवाले (वरसत्), यज्ञमें प्राप्त होनेवाले (ऋतसत्) और आकाशमें विचरनेवाले (व्योमसत्) हैं तथा आप जलमें उत्पन्न होनेवाले (अब्जा), चार प्रकारके प्राणियोंके रूपमें पृथ्वीपर उत्पन्न होनेवाले (गोजा), सत्यसे उत्पन्न होनेवाले (ऋतजा), पर्वतोंमें उत्पन्न होनेवाले (अद्रिजा) एवं सत्यस्वरूप और महान् हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

इसके पश्चात् दिग्देवताओंको पूर्वादि क्रमसे नमस्कार करे—

'ॐ इन्द्राय नमः' प्राच्यै॥ 'ॐ अग्नये नमः' आग्नेय्यै॥
'ॐ यमाय नमः' दक्षिणायै॥ 'ॐ निर्ऋतये नमः' नैर्ऋत्यै॥
'ॐ वरुणाय नमः' पश्चिमायै॥ 'ॐ वायवे नमः' वायव्यै॥
'ॐ सोमाय नमः' उदीच्यै॥ 'ॐ ईशानाय नमः' ऐशान्यै॥
'ॐ ब्रह्मणे नमः' ऊर्ध्वायै॥ 'ॐ अनन्ताय नमः' अधरायै॥

इसके बाद जलमें नमस्कार करे—

ॐ ब्रह्मणे नमः। ॐ अग्नये नमः। ॐ पृथिव्यै नमः। ॐ ओषधिभ्यो नमः। ॐ वाचे नमः। ॐ वाचस्पतये नमः।

ॐ महद्भ्यो नमः। ॐ विष्णावे नमः। ॐ अद्भ्यो नमः।
ॐ अपाम्पतये नमः। ॐ वरुणाय नमः।

मुखमार्जन

फिर नीचे लिखा मन्त्र पढ़कर शुद्ध जलसे मुँह धो डाले—

ॐ सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा स ँ शिवेन। त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम्। (यजु० २। २४)

हम ब्रह्मतेजसे, क्षीर आदि रससे, कर्म करनेमें समर्थ सुदृढ़ अंगोंसे और शान्त मनसे संयुक्त हों। सम्यक् प्रकारसे दान करनेवाले त्वष्टा देवता हमें धन दें और हमारे शरीरमें जो शक्ति आदिकी न्यूनता आ गयी है, उसका मार्जन करें [अर्थात् हमारे धन और शरीरकी पुष्टि करें]।

विसर्जन

निम्नांकित मन्त्र पढ़कर देवताओंका विसर्जन करे—

ॐ देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित।
मनसस्पत इमं देव यज्ञ ँ स्वाहा वाते धाः॥

(यजु० ८। २१)

हे यज्ञवेत्ता देवताओ! आपलोग हमारे इस तर्पणरूपी यज्ञको समाप्त जानकर अपने गन्तव्यमार्गको पधारें। हे चित्तके प्रवर्तक परमेश्वर! मैं इस यज्ञको आपके हाथमें अर्पण करता हूँ। आप इसे वायुदेवतामें स्थापित करें।

समर्पण

निम्नांकित वाक्य पढ़कर यह तर्पण-कर्म भगवान्‌को समर्पित करे—

अनेन यथाशक्तिकृतेन देवर्षिमनुष्यपितृतर्पणाख्येन कर्मणा भगवान् मम समस्तपितृस्वरूपी जनार्दनवासुदेवः प्रीयतां न मम।
ॐ विष्णवे नमः। ॐ विष्णवे नमः। ॐ विष्णवे नमः।

॥ ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु॥

॥ इति॥

बलिवैश्वदेव-विधि

बलिवैश्वदेव-विधि इस प्रकार है—पहले आचमन और प्राणायाम करके दायें हाथकी अनामिका अंगुलीमें **'पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ०'** इस मन्त्रसे कुशकी पवित्री-धारण करे। तत्पश्चात् निम्नांकित सकल्प पढ़े। (यह संकल्प मानसिक भी किया जा सकता है।)

हरिः ॐ तत्सत्*.....अद्य शुभपुण्यतिथौ मम गृहे पञ्च-सूनाजनितसकलदोषपरिहारपूर्वकं नित्यकर्मानुष्ठानसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं बलिवैश्वदेवाख्यं कर्म करिष्ये।

इसके बाद लौकिक अग्नि प्रज्वलित करके अग्निदेवका निम्नांकित मन्त्र पढ़ते हुए ध्यान करे—

ॐ चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आ विवेश॥

(ऋ० अ० ३ अ० ८ व० १०)

इस अग्निदेवके चार सींग, तीन पैर, दो सिर और सात हाथ हैं। कामनाओंकी वर्षा करनेवाला यह महान् देव तीन स्थानोंमें बँधा हुआ शब्द करता है और प्राणियोंके भीतर जठरानलरूपसे प्रविष्ट है।

फिर नीचे लिखे मन्त्रको पढ़कर अग्निदेवको मानसिक आसन दे—

ॐ एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः॥

(यजु० ३२। ४)

यह अग्निस्वरूप परमात्मदेव ही सम्पूर्ण दिशा-विदिशाओंमें व्याप्त है, यही हिरण्यगर्भरूपसे सबसे प्रथम उत्पन्न (प्रकट) हुआ था, माताके गर्भमें

---

* शून्य स्थानपर संध्या और तर्पणके अनुसार देश, काल, नाम आदिकी योजना कर लेनी चाहिये।

भी यही रहता है और यही उत्पन्न होनेवाला है, हे मनुष्यो! यही सर्वव्यापक और सब ओर मुखोंवाला है।

तत्पश्चात् अग्निदेवको नमस्कार करके एक पात्रमें बिना लवण (लोन)-का सुपक्व अन्न रख ले और यज्ञोपवीतको सव्यभावमें रखे हुए ही दायें घुटनेको पृथ्वीपर टेककर अन्नकी पाँच आहुतियाँ नीचे लिखे पाँच मन्त्रोंको क्रमश: पढ़ते हुए बारी-बारीसे अग्निमें छोड़े। (अग्निके अभावमें एक पात्रमें जल रखकर उसीमें आहुतियाँ छोड़ सकते हैं।)

(१) देवयज्ञ

१	२
५	अग्नि
४	३

१ ॐ ब्रह्मणे स्वाहा, इदं ब्रह्मणे न मम *।
२ ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम।
३ ॐ गृह्याभ्य: स्वाहा, इदं गृह्याभ्यो न मम।
४ ॐ कश्यपाय स्वाहा, इदं कश्यपाय न मम।
५ ॐ अनुमतये स्वाहा, इदमनुमतये न मम।

पुन: अग्निके पास ही पानीसे एक चौकोना चक्र बनाकर उसका द्वार पूर्वकी ओर रखे और उसीमें बतलाये जानेवाले स्थानोंपर क्रमश: बीस ग्रास अन्न देना चाहिये। जिज्ञासुओंकी सुविधाके लिये नकशा और ग्रास अर्पण करनेके मन्त्र अगले पृष्ठ ४४ में दिये जाते हैं। नकशेमें केवल अंक रखा गया है, उसमें जहाँ एक है वहाँ प्रथम ग्रास और दोकी जगह दूसरा ग्रास देना चाहिये। इसी प्रकार तीनसे चलकर बीसतक क्रमश: निर्दिष्ट स्थानपर ग्रास देना उचित है। नकशेके नीचे क्रमश: बीस मन्त्र दिये जाते हैं, एक-एक मन्त्र पढ़कर एक-एक ग्रास अर्पण करना चाहिये।

---

* प्रथम मन्त्रका अर्थ इस प्रकार है—'ब्रह्माजीके लिये इस अन्नका हवन किया जाता है, यह ब्रह्माजीके लिये ही प्राप्त हो, इसपर मेरा अधिकार नहीं है।' इसी प्रकार अन्य मन्त्रोंका अर्थ समझना चाहिये। २, ३, ४ और ५ में क्रमश: प्रजापति, गृह्या, कश्यप तथा अनुमतिके लिये हवन किया गया है।

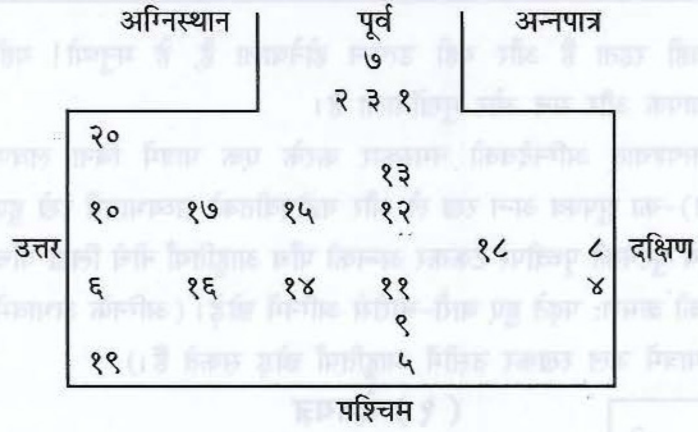

(२) भूतयज्ञ *

१ ॐ धात्रे नमः, इदं धात्रे न मम।
२ ॐ विधात्रे नमः, इदं विधात्रे न मम।
३ ॐ वायवे नमः, इदं वायवे न मम।
४ ॐ वायवे नमः, इदं वायवे न मम।
५ ॐ वायवे नमः, इदं वायवे न मम।
६ ॐ वायवे नमः, इदं वायवे न मम।
७ ॐ प्राच्यै नमः, इदं प्राच्यै न मम।
८ ॐ अवाच्यै नमः, इदमवाच्यै न मम।
९ ॐ प्रतीच्यै नमः, इदं प्रतीच्यै न मम।
१० ॐ उदीच्यै नमः, इदमुदीच्यै न मम।
११ ॐ ब्रह्मणे नमः, इदं ब्रह्मणे न मम।
१२ ॐ अन्तरिक्षाय नमः, इदमन्तरिक्षाय न मम।
१३ ॐ सूर्याय नमः, इदं सूर्याय न मम।

* यज्ञोपवीतको सव्य करके पके हुए अन्नके १७ ग्रास अंकित मंडलमें यथायोग्य स्थानपर नीचे लिखे हुए मन्त्रोंद्वारा क्रमशः छोड़ दे।

१४ ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः, इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यो न मम।
१५ ॐ विश्वेभ्यो भूतेभ्यो नमः, इदं विश्वेभ्यो भूतेभ्यो न मम।
१६ ॐ उषसे नमः, इदमुषसे न मम।
१७ ॐ भूतानां पतये नमः, इदं भूतानां पतये न मम।

(३) पितृयज्ञ [१]

१८ ॐ पितृभ्यः स्वधा नमः, इदं पितृभ्यः स्वधा न मम।

निर्णेजनम् [२]

१९ ॐ यक्ष्मैतत्ते निर्णेजनं नमः, इदं यक्ष्मणे न मम।

(४) मनुष्ययज्ञ [३]

२० ॐ हन्त ते सनकादिमनुष्येभ्यो नमः, इदं हन्त ते सनकादिमनुष्येभ्यो न मम।

(५) ब्रह्मयज्ञ

पूर्वाभिमुख सव्य होकर गायत्री मन्त्रका जप (कम-से-कम ३ बार) करे।

पञ्चबलिके मन्त्र

(१) गोबलि

निम्नांकित मन्त्र पढ़ते हुए सव्यभावसे ही गौओंके लिये बलि अर्पण करे-

ॐ सौरभेय्यः सर्वहिताः पवित्राः पुण्यराशयः।
प्रतिगृह्णन्तु मे ग्रासं गावस्त्रैलोक्यमातरः॥
इदं गोभ्यो न मम।

१- यज्ञोपवीतको अपसव्य करके बायें घुटनेको पृथ्वीपर रखकर दक्षिणकी ओर मुख करके हो सके तो साथमें तिल लेकर, पक्व अन्न अंकित मंडलमें निर्दिष्ट स्थानपर मन्त्र पढ़कर रख दे।

२- यज्ञोपवीतको सव्य करके अन्नके पात्रको धोकर वह जल अंकित मंडलमें १९ वें अंककी जगह मन्त्र पढ़कर छोड़ दे।

३- यज्ञोपवीतको मालाकी भाँति कंठमें करके उत्तराभिमुख हो पक्व अन्न अंकित मंडलमें २० वें अंककी जगह मन्त्रद्वारा छोड़ दे।

(२) कुक्कुरबलि

फिर यज्ञोपवीतको कण्ठमें मालाकी भाँति करके कुत्तोंके लिये ग्रास दे। मन्त्र यह है—

ॐ द्वौ श्वानौ श्यामशबलौ वैवस्वतकुलोद्भवौ।
ताभ्यामन्नं प्रदास्यामि स्यातामेतावहिंसकौ॥
इदं श्वभ्यां न मम।

(३) काकबलि

पुनः यज्ञोपवीतको अपसव्य करके नीचे लिखे मन्त्रको पढ़ते हुए कौओंके लिये भूमिपर ग्रास दे—

ॐ ऐन्द्रवारुणवायव्या याम्या वै नैर्ऋतास्तथा।
वायसाः प्रतिगृह्णन्तु भूमौ पिण्डं मयोज्झितम्॥
इदं वायसेभ्यो न मम।

(४) देवादिबलि

फिर सव्यभावसे निम्नांकित मन्त्र पढ़कर देवता आदिके लिये अन्न अर्पण करे—

ॐ देवा मनुष्याः पशवो वयांसि सिद्धाः सयक्षोरगदैत्यसङ्घाः।
प्रेताः पिशाचास्तरवः समस्ता ये चान्नमिच्छन्ति मया प्रदत्तम्॥
इदमन्नं देवादिभ्यो न मम।

(५) पिपीलिकादिबलि

इसी प्रकार निम्नांकित मन्त्रसे चींटी आदिके लिये अन्न दे—

ॐ पिपीलिकाः कीटपतङ्गकाद्या बुभुक्षिताः कर्मनिबन्धबद्धाः।
तेषां हि तृप्त्यर्थमिदं मयान्नं तेभ्यो विसृष्टं सुखिनो भवन्तु॥
इदमन्नं पिपीलिकादिभ्यो न मम।

संक्षिप्त भोजन-प्रयोग *

बलिवैश्वदेवके बाद अतिथि-पूजनादिसे निवृत्त होकर अपने कुटुम्बियोंके साथ भोजन करे। पहले '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' इस मन्त्रका उच्चारण करके अपने आगे जलसे चार अंगुलका चौकोना मंडप बनावे और उसीपर भोजनपात्र रखकर उसमें घृतसहित व्यञ्जन रखावे तथा अपने दाहिने तरफ जलपात्र रखे, फिर भगवद्बुद्धिसे अन्नको प्रणाम करके—

* भोजनके विषयमें ऋषियोंद्वारा बतायी हुई कुछ बातें नीचे दी जा रही हैं— दोनों पैर, दोनों हाथ और मुँह धोकर पूर्वकी ओर मुख करके मौनभावसे भोजन करे। जिसके माता-पिता जीवित हों वह दक्षिणकी ओर मुख करके भोजन न करे। भोजन करते समय बायें हाथसे अन्नका स्पर्श न करे और चरण, मस्तक तथा अंडकोषको भी न छुए। केवल प्राणादिके लिये पाँच ग्रास अर्पण करते समयतक बायें हाथसे पात्रको पकड़े रहे, उसके बाद छोड़ दे। भोजनके समय हाथ घुटनोंके बाहर न करे। भोजन-कालमें बायें हाथसे जलपात्र उठाकर दाहिने हाथकी कलाईपर रखकर यदि पानी पिये तो वह पात्र भोजन समाप्त होनेतक जूठा नहीं माना जाता—ऐसा मनुका कथन है। यदि भोजन करता हुआ द्विज किसी दूसरे भोजन करते हुए द्विजको छू दे तो दोनोंको ही भोजन छोड़ देना चाहिये। रात्रिको भोजन करते समय यदि दीप बुझ जाय तो भोजन रोक दे और अन्नका दायें हाथसे स्पर्श करते हुए मन-ही-मन गायत्रीका स्मरण करे। पुनः दीप जलानेके बाद ही भोजन आरम्भ करे। अधिक मात्रामें भोजन करनेसे आयु तथा आरोग्यका नाश होता है। उदरका आधा भाग अन्नसे भरे, चौथाई भाग जलसे भरे और एक चौथाई भाग वायुके आने-जानेके लिये खाली रखे। भोजनके बाद थोड़ी देरतक बैठे। फिर १०० कदम चलकर बायीं करवटसे कुछ देरतक लेटे रहे तो अन्न ठीक पचता है। भोजनके अन्तमें भगवान्‌को अर्पण किया हुआ तुलसीदल भक्षण करना चाहिये।

ॐ ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥
त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।
गृहाण सुमुखो भूत्वा प्रसीद परमेश्वर॥

—इन मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए—अन्नमें तुलसीदल छोड़कर जलसहित अन्न भगवान् नारायणको अर्पण करे, फिर दोनों हाथोंसे अन्नको ऊपरसे आवृत कर इस मन्त्रका पाठ करे—

ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्ष ँ शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ अकल्पयन्॥
(यजु० ३१।१३)

'परमेश्वरकी नाभिसे अन्तरिक्ष, सिरसे द्युलोक, पैरोंसे भूमि और कानोंसे दिशाओंकी उत्पत्ति हुई। इस प्रकार परमात्माने समस्त लोकोंकी रचना की।'

तदनन्तर 'ॐ अमृतोपस्तरणमसि' इस मन्त्रसे आचमन करके आगे लिखे हुए पाँच मन्त्रोंसे क्रमशः एक-एकको पढ़कर एक-एक ग्रास अन्न (जो बेर या आँवलेके फलके बराबर हो) मुँहमें डाले—

१-ॐ प्राणाय स्वाहा। २-ॐ अपानाय स्वाहा। ३-ॐ व्यानाय स्वाहा। ४-ॐ समानाय स्वाहा। ५-ॐ उदानाय स्वाहा।

—इसके बाद पुनः आचमन करके मौन होकर यथाविधि भोजन करे। भोजनके अन्तमें 'ॐ अमृतापिधानमसि' इस मन्त्रसे आचमन करना चाहिये।

~~०~~